शिक्षा का सहजीकरण : गली के बच्चों की शिक्षा

❑ डॉ. शारदा बालगोपालन

अनुवाद : देवयानी

स्ट्रीट चिल्ड्रन यानी गलियों के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और पुनर्वास को लेकर दुनिया भर में अनेक कार्यक्रम चल रहे हैं । इन कार्यक्रमों, नवाचारों और विशेष प्रयोगों के जरिये गलियों के बच्चों की एक विशिष्ट छवि, उनकी पहचान और समस्याओं के वर्गीकरण एवं निदान पर अनुसंधान किए जा रहे हैं । ये अनुसंधान गली के बच्चों के बारे में पूर्व-निर्मित सोच और नीति को पुष्ट करते हैं और औपचारिक शिक्षा प्रणाली से इनके जुड़ाव में ही समस्या का सर्वश्रेष्ठ हल देखते हैं । लेकिन क्या विकासशील देशों की गलियों के बच्चों की अवस्थिति विकसित देशों के समान है, तो क्या दुनिया में गलियों के बच्चों की पृष्ठभूमि और परिस्थितियों में एकरूपता नहीं हैं ?

यदि नहीं तो क्या विकासशील देशों में इन कार्यक्रमों के यूरोप केन्द्रित मॉडल लागू किये जा सकते हैं ? क्या औपचारिक शिक्षा प्रणाली वास्तव में गली के बच्चों के लिए वरदान है ? ऐसे ही कुछ जटिल प्रश्नों पर इस लेख में विचार किया गया है ।

परिचय

नब्बे के दशक के दौरान तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों के प्रति सरोकारों के इस अपूर्व उभार को 1989 में बच्चों के अधिकारों पर आयोजित सम्मेलन के माध्यम से समझा जा सकता है । बच्चों के साथ इस तरह का काम कभी नहीं हुआ था बल्कि इस सम्मेलन के साथ ही तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों के रोजमर्रा के जीवन के प्रति नजरिए में भी अनेक स्तरों पर बदलाव आया । सम्मेलन में सर्वाधिक महत्व बच्चों के लिए, बच्चों पर और बच्चों के द्वारा काम को दिया गया । इस सम्मेलन ने हमारे सामने बचपन तथा बच्चों के बारे में विमर्श के अनेक आधार बिन्दु प्रस्तुत किए जिनके द्वारा हम अपने काम को न्याय-संगत तथा तर्क-संगत ठहरा सकें ।

सम्मेलन ने बच्चों के बारे में यह आम धारणा बनाने में मदद की कि बचपन की जो छवि बनती है उसमें निर्बाध सुरक्षा, संरक्षण और मासूमियत का साम्राज्य दिखाई देता है । इस परिकल्पना को जब मीडिया द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली फैक्टरियों में काम करते और गलियों में भटकते तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों की छवि के रूबरू रखा जाता है, निस्संदेह गरीब बच्चों के साथ किया जाने वाला यह सारा कार्य एक खास किस्म का सम्मान पा जाता है कि कम से कम इन बच्चों के जीवन को पाशविकता से मुक्त कराने के लिए कुछ तो किया जा रहा है, ऐसे में इन कार्यों की आलोचना करना इन बच्चों के लगातार इन्हीं क्रूरताओं को भोगते रहने की कामना करने के समान होगा । बच्चों के इस चित्रण और उनके ''बचपन को पुन: बहाल'' करने के लिए बनाये जाने वाले कार्यक्रमों में एक ऐसी एकरूपता का अभाव है जिसके तहत विश्वव्यापी गरीब बच्चों की समस्या के लिए अपनाए गए समाधान को रेखांकित किया जा सके।

सामान्य बचपन के इस विमर्श का एक प्रमुख मुद्दा औपचारिक शिक्षा है । शिक्षा की व्यवस्था, खासतौर से प्राथमिक शिक्षा के प्रावधान को मौजूदा विमर्श में गरीब बच्चों को जीवन के विकल्प उपलब्ध कराने का अवसर देने के लिए एक अनिवार्य हिस्सा माना गया है ।

इस सच को पहचानने के बाद 90 के दशक की शुरूआत से ही कच्ची बस्तियों के बच्चों की शिक्षा के कार्यक्रमों में सर्वाधिक ध्यान, जितना जल्दी हो सके बच्चे को स्कूल में दाखिल कराने पर दिया जाने लगा । इन शिक्षा स्थलों में औपचारिक शिक्षा की तार्किकता का सहजीकरण होता है और अब इसी के अभाव को उनकी भौतिक गरीबी के कारण के रूप में देखा जाने लगा है ।

गली के बच्चों के साथ काम करने वाले एक कार्यकर्ता और शोधकर्ता के रूप में मेरी दिलचस्पी इस बात में रहती है कि कैसे औपचारिक शिक्षा का सहजीकरण किया जा सकता है, कौन से विमर्श इस सहजीकरण में सहायता करते हैं, किस विमर्श से सहजीकरण संभव होता है और इसके लिए किस प्रकार के जमीनी कार्य की जरूरत है और इससे बच्चों के सामने कौनसे विषय खुलते हैं । गली के बच्चों तथा शिक्षा पर मौजूदा अनुसंधान अधिकांशत: अनुभवाश्रित है जिसमें कार्यक्रम संबंधी पहलू को केन्द्र में रखा जाता है, सफल प्रयोगों को रेखांकित किया जाता है और औपचारिक शिक्षा के मूल्य को स्थिर करने वाले विमर्श के तहत अधिक प्रभावी शैक्षिक कार्ययोजनाओं को स्पष्ट किया जाता है । (ब्लन्ट 1995,

यूनेस्को 1995), इन शैक्षिक कार्यक्रमों तथा औपचारिक शिक्षा के बीच समरूपता का शायद ही कभी विश्लेषण किया जाता है। यहां तक कि चुनिंदा विमर्शों के प्रचार-प्रसार में इन शिक्षा केन्द्रों की भूमिका का भी विश्लेषण नहीं किया जाता । और तो और इन कार्यक्रमों में गली के बच्चों के अनुभवों, उन सफल अनुभवों को छोड़ दें, जिनमें बच्चे ने औपचारिक शिक्षा की तयशुदा ऊंचाइयों को छू लिया हो, की चर्चा बहुत कम ही की जाती है ।

इस पत्र में कलकत्ता में गली के बच्चों के एक शिक्षा केन्द्र में पढ़ने वाले बच्चों के समूह के चारित्रिक विश्लेषण परक शैक्षिक अनुभवों का उपयोग करते हुए औपचारिक स्कूलों के उस प्रभुत्ववादी विश्लेषण की आलोचना की गई है, जिस पर गली के बच्चों को शैक्षिक कार्यक्रमों से जोड़ने के पीछे की जटिलता को उद्घाटित करते हुए इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को खोलना है क्योंकि वर्तमान में बच्चों को इन कार्यक्रमों से जोड़ने की यह प्रक्रिया इन्हीं कार्यक्रमों के असंगत प्रयासों द्वारा संपन्न होती है । बच्चों को शैक्षिक कार्यक्रमों से जोड़ने की इस प्रक्रिया में साक्षरता के प्रति उनकी लालसा, उत्कंठा और कुंठा ज्यों की त्यों बनी रहती है ।

चूंकि औपचारिक स्कूलों की कुछ रूढ़िगत सीमाएं हैं और गली के बच्चों को आसानी से उनमें नामांकित नहीं किया जा सकता। इसलिए अनौपारिक शिक्षा कार्यक्रम इन बच्चों के लिए एक ऐसे क्षेत्र के रूप में कार्य करते हैं, बच्चे प्राथमिक साक्षरता अर्जित करते हैं और जहां औपचारिक शिक्षा के लिए उनकी योग्यता तथा क्षमता का मूल्यांकन किया जाता है । हालांकि इन शैक्षिक कार्यक्रमों के तहत किये जाने वाले प्रगतिशील शैक्षिक विमर्श में औपचारिक विद्यालयों के पढ़ाने के तरीके तथा पाठ्यक्रम इत्यादि की आलोचना की जाती है लेकिन वे इन विद्यालयों के सांस्कृतिक विश्लेषणों का पोषण ही करते हैं । रूढ़िवाद तथा भौतिक पाठ्यक्रम में गली के बच्चों को शामिल न किए जाने की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रगतिशील शिक्षक अपने कार्यकमों में विद्यार्थी केन्द्रित रवैया अपनाते हैं ।

अपने इस अनुशासनहीन छात्र को शिक्षित करने के लिए एक पृथक तरीका विकसित करने के लिए इन शैक्षणिक कार्यक्रमों को किस सीमा तक ''बच्चों पर केन्द्रित'' बनाया जाता है उससे समाज में बच्चे की स्थिति का अतीत, वर्तमान और भविष्य प्रतिबिम्बित होता है । क्या यह बच्चे की क्षमताओं का विकास तथा समाजीकरण केवल इस लिहाज से नहीं करती है कि उसे औपचारिक विद्यालयों में प्रवेश मिल सके । क्या यह औपचारिक शिक्षा तथा विश्व दृष्टि भी उसी व्यवस्था को पोषित नहीं करती है जो कि इन बच्चों की चौंतरफा उपेक्षा का कारण है । क्या यह शैक्षिक कार्यक्रम बच्चे को औपचारिक शिक्षा के लिए तैयार करते समय इस प्रकार शिक्षा व्यवस्था में मौजूद सांकेतिक हिंसा के प्रति भी इन बच्चों को आगाह करते हैं ।

शिक्षा स्थलों के असंगत कार्य और गली के बच्चों का निर्माण

साक्षरण के सामाजिक अभियान पर शोध में, न केवल गली के बच्चे इस साक्षरता का कैसे इस्तेमाल करते हैं बल्कि इसे अर्जित कर वे किन मूल्यों को स्थापित करते हैं, इसका अध्ययन भी शामिल हो पाता है (स्ट्रीट 1993) । एक सीखने वाले के रूप में उनकी पहचान बनाने में यह मूल्य बड़ी भूमिका निभाते हैं । इन बच्चों में साक्षरता के अभाव तथा वे जिन मूल्यों को इससे संबद्ध बताते हैं के बीच कोई प्रत्यक्ष पारस्परिक संबंध नहीं होता । बेशक उनके साक्षर व्यक्तित्व का निर्माण प्रचलित सांस्कृतिक परिभाषा के तहत ही होता है जिसके तहत उनकी औपचारिक शैक्षिक योग्यता के अनुसार लिखने तथा पढ़ने की क्षमता को विकसित कर दिया जाता है।

बच्चे स्वयं को छात्र के रूप में देखने लगते हैं। और यह छवि उनकी स्व के प्रति समझ को बदल देती है । व्यक्तित्व निर्माण की यह प्रक्रिया न केवल गली के बच्चे तथा बाल श्रमिक के रूप में उनके रोजमर्रा के अनुभवों से लगातार टकराती है बल्कि उस जगह शैक्षिक कार्यक्रम के व्यापक वैचारिक आधार से भी उसका टकराव होता है । यह पहचान उनकी स्व के प्रति समझ, अपने भविष्य के प्रति नजरिये को तो आकार देती ही है, वे स्वयं को विभिन्न पदों पर पहुंचते हुए देखते हैं । घटनाओं, प्रतिक्रियाओं तथा मानवीय विमर्शों में से चुनते हुए यहां मेरा प्रयास उस जटिलता को उद्घाटित करना है जो साक्षरता से बच्चों की सम्बद्धता के चरित्र और व्यक्तित्व निर्माण को रेखांकित करती है ।

कलकत्ता में गली के बच्चों के लिए ये स्थल शहर के एक व्यस्ततम रेल्वे स्टेशन के एक प्लेटफार्म के सिरे पर स्थित है । यह आवासीय स्थल 1989 में शुरू किया गया था। यहां खासतौर से लड़कों को, जिनमें से बड़ी तादाद ऐसे लड़कों की थी जो गांव में भयंकर गरीबी से तंग आ कर शहर में बेहतर जीवन की उम्मीद लिए घरों से भागकर आए थे और सालों तक महानगर में यहां वहां भटकते रहने के बाद वे इस आवासीय स्थल में पहुंचे थे, यहां उनको सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं, उनमें रहने की जगह, भोजन, आवश्यक स्वास्थ्य सेवाएं, परामर्श, सामान को रखने के लिए लॉकर तथा नहाने की सुविधाएं शामिल हैं ।

गली के बच्चों के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों को अक्सर बच्चों में क्षमताओं के स्तर के आधार पर वर्गीकरण कर सलाह दी जाती

है । कलकत्ता के इस स्थल में इसी आधार पर बच्चों को दो कमरों में बांटा गया था । एक कमरे के बच्चे अभी बंगला और अंग्रेजी की वर्णमाला ही सीख रहे थे जबकि दूसरे कमरे के बच्चे प्रवाह में पढ़ना शुरू कर चुके थे । सामान्य तौर पर दोनों कमरों में एक एक कर्मचारी मौजूद रहता था और कक्षा के दौरान दोनों कमरों के बीच का दरवाजा बंद रहता था।

क्षमता के स्तर पर आधारित विभाजन की सादगी तथा वस्तुगत पैमानों के प्रति स्पष्ट तटस्थता उस परिपाटी को ढंक लेती है जिसके आधार पर छात्रों का मूल्यांकन किया जाता है । बंदीगृहों की वंशावली पर मीशेल फुको ने अपने लेख में (1979) चर्चा की है कि कैसे शैक्षणिक व्यवस्था एक ''स्वाभाविक'' व्यवस्था के तहत छात्रों के चित्रण तथा वर्गीकरण की वैधता अर्जित करती है । यह ऐसी निरंतर निगरानी के संस्थापन के द्वारा संभव होता है जिससे यह सुनिश्चित करने में मदद मिलती है, कौन पूरी योग्यता के साथ काम करने में सक्षम है, एक नियम के तहत उनकी परस्पर तुलना की जाती है । वे लिखते हैं -

एक तरह से सामान्यीकरण की शक्ति एकरूपता को आरोपित करती है लेकिन अंतर मापने, स्तर के भेद करने, विशेषताएं बताने और एक से दूसरे के बीच के अंतर को बताने से विशिष्टताएं भी रेखांकित होती हैं । यह समझा जा सकता है कि कैसे औपचारिक समानता की व्यवस्था के तहत नियम की शक्ति काम करती है क्योंकि एकरूपता जो कि एक शर्त है, के भीतर नियम एक उपयोगी आदेश की तरह काम करता है और इस नापने के परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत विविधताओं के सभी स्तर स्पष्ट होते हैं ।'(फुको, 1977, पृष्ठ 189)

नियम बनाने का अर्थ है श्रेणीबद्ध करना, इसका अर्थ है स्वीकृत और प्रतिबन्धित क्षेत्र रखना और यह उसनियम के तहत व्यक्तियों के बीच निरंतर तुलना का परिणाम है जिसकी मैं साक्षरता के संदर्भ में गली के बच्चों में व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में छानबीन करती हूं । शिक्षा स्थल पर सामने के कमरे में बैठा पंद्रह वर्षीय राजा, वर्णमाला याद कर रहा था, तभी उसकी मां वहां आई। कम उम्र में एव्यूसिव पिता को छोड़ कर भाग आया राजा अपनी झगडालू प्रवृत्ति के कारण अक्सर अनुपस्थित पाया जाता। इस समय उसकी मां उसे एक भंडार मालिक के घर में नौकर की तरह काम करने के लिए मनाने को आई थी । राजा उसके प्रथम विवाह से उत्पन्न संतान था। जब राजा का पिता घर छोड़ कर चला गया और लंबे समय तक नहीं लौटा तो उसकी मां ने दूसरा विवाह कर लिया। उसका दूसरा पति एक दुकान का मालिक था लेकिन उसने राजा को अपनाने से इंकार कर दिया । परिणामस्वरूप राजा को अपनी आजीविका स्वयं चलाने के लिए निकाल दिया गया । उसने कुछ समय तक एक बल्व फैक्टरी में काम किया और फिर कुछ झांडपोछ के काम के लिए वहां से छोड़ दिया । गलियों में रहते हुए भी वह निरंतर अपनी मां से संपर्क में रहा ।

ज्यादा से ज्यादा गली के बच्चों को औपचारिक शिक्षा के विद्यालयों में प्रवेश दिलाने की इन शैक्षिक कार्यक्रमों की उत्कंठा अंतत: उसी विचार को पोषित करती है कि निर्बाध सामाजिक गतिशीलता तो औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर ही अर्पित की जा सकती है । औपचारिक शिक्षा के द्वारा सभी वर्गों के लिए समान गतिशीलता के प्रति इस स्वीकार्यता में ही विचार भी अंतर्निहित है कि अभी कठिन परिश्रम और एक सीमा तक आधीनता स्वीकार कर यदि बच्चा औपचारिक शिक्षा हासिल कर लेगा तो भविष्य में वह अपेक्षाकृत कम श्रमसाध्य अथवा बिना रूटीनी नौकरी हासिल कर सकेगा।

विजय जो कि यहां कार्य करता है ने बताया कि राजा ने यहां आकर ज्यादा कुछ नहीं सीखा है । उसने बताया कि यहां रहने वाले सभी बच्चों को हम यदि वे रुचि दिखाते हैं तो स्कूल में भर्ती करा देते हैं । लेकिन हमें समझ नहीं आता कि राजा के साथ क्या किया जाये। वह इतने सालों से पहले दर्ज में ही है । अपनी बात की पुष्टि के लिए उसने इस चर्चा को अनसुना करते हुए वहीं जमीन पर बैठे राजा से अंग्रेजी में 1 से 30 तक गिनती बोलने को कहा। उसकी आवाज ने उसकी मां सहित इस कमरे में बैठे सभी बच्चों का मन आकर्षित कर लिया । राजा के उससे आगे न बोल पाने पर कुछ बच्चे हंसने लगे और जोर जोर से उससे आगे की गिनती बोलने लगे । राजा अपनी विफलता पर लज्जित-सा मुस्कुराया । यह सार्वजनिक प्रदर्शन सीखने की सारी जवाबदेही बच्चे पर डाल देता है जबकि यहां शिक्षक की जिम्मेदारी का लोप हो जाता है ।

राजा को भी इस स्थल के श्रेणी विभाजन के यहां एक ऐसे द्विवर्गीकरण के तहत समायोजित कर लिया गया जिसके साक्षरता के स्तर को उन बच्चों के पिछले व्यक्तिगत जीवन के अनुभवों पर डाले जाने वाले आवरण के रूप में अपनाया गया है । भले ही उनमें से किसी ने घर छोड़ने से पहले थोड़ी बहुत औपचारिक शिक्षा ली तो, कितना ही लंबा समय उन्होंने गलियों में गुजारा हो और

कैसे ही हालात का सामना उन्हें करना पड़ा हो, उनके अतीत को इस तरह मिटा दिया जाता है और उन्हें एक ऐसे छात्र के रूप में देखा जाने लगता है जिसकी आराम से अन्यों के साथ तुलना की जा सके ।

राजा जैसे बड़े बच्चों के लिए इस किस्म की तुलना शर्मिंदगी की स्थिति पैदा करती है । ऐसे में वे अपनी शैक्षिक क्षमता के बारे में बात करते समय विफलता के जन्मजात कारण तलाशने लगते हैं। वह कहता है, ''मेरे दिमाग में गोबर भरा है । पढ़ाई मेरे भेजे में नहीं घुसती । जब भी मैं पढ़ने बैठता हूं , मुझे नींद आने लगती है । जब छोटा था तब मैं स्कूल जाता था और तब मैंने अंग्रेजी वर्णमाला भी लिखनी सीखी थी । मैं छोटी ए बी सी डी भी लिखना जानता हूं लेकिन इससे ज्यादा मुझे नहीं आता।'' वह उसी तरह बात करता है जैसे कि उसी के साथ पहले दर्जे में बैठने वाला 16 वर्षीय चेजू कहता है कि उसके दिमाग का एक पुर्जा ढीला है। शुरू में मैं कुछ नहीं पढ़ पाया जो कि मेरे दिमाग में कुछ जाता ही नहीं है । यहां तक कि मैं जब बोलता हूं तो आप समझ नहीं सकते कि मैं क्या कर रहा हूं क्योंकि मेरी जीभ बहुत मोटी है । पढ़ाई वहीं कर सकते हैं जिनके नसीब में पढ़ना लिखना होता है । मेरी किस्मत में पढ़ाई नहीं है इसलिए मेरे दिमाग का एक पुर्जा ढीला है ।

छोटे बच्चों के साथ पहले दर्जे में बैठने वाले ज्यादातर बड़े बच्चे अपने बारे में इसी तरह की भाषा का उपयोग करते हैं और गाहे बगाहे छोटे बच्चों को उदाहरण दिया जाता है कि यदि वे नहीं पढ़ेंगे तो वे भी उनके जैसे हो जाएंगे । इन बच्चों को जड़ बुद्धि मान लिया जाता है और यह बच्चे अपनी पढ़ने लिखने की अक्षमता को ऐसे विकार के रूप में देखने लगते हैं जिससे मुक्ति संभव नहीं । बड़े बच्चों का अपनी उम्र के अनुसार साक्षर न हो पाना कोई ऐसी बात नहीं है जिसे हमेशा प्रदर्शित किया जाता रहे । बल्कि लगातार इसके प्रदर्शन और इससे पैदा होने वाली शर्मिंदगी उनकी इस घटना को और मजबूत बनाने का ही काम करती है कि पढ़ाई कोई ऐसी चीज है जिस तक वे पहुंच नहीं सकते और उनकी उपेक्षा किया जाना ही नियति मान ली जाती है ।

इन उदाहरणों को अपवाद नहीं कहा जा सकता और न गली के बच्चों के इस शैक्षिक कार्यक्रम को ही अपवाद कहा जा सकता है क्योंकि यही व्यक्तित्व की गली के बच्चों के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों के विमर्श की सचाई को उद्घाटित करते हैं ।

इस पैमाने की श्रेष्ठता न केवल बच्चे पर स्वयं को साबित करने का बोझ डालती है बल्कि यह व्यक्तिगत सफलता को ही आदर्श भी साबित करती है । इन बच्चों के अतीत, वर्तमान और संभवत: भविष्य में भी व्याप्त गरीबी, भूमिहीनता और असमानता को किसी व्यवस्था गत असमानता की समस्या के रूप में रेखांकित नहीं किया जाता और न ही इन असमानताओं के पीछे समाज के प्रभारी तबकों की जिम्मेदारी को ही रेखांकित किया जाता है ।

ज्यादा से ज्यादा गली के बच्चों को औपचारिक शिक्षा के विद्यालयों में प्रवेश दिलाने की इन शैक्षिक कार्यक्रमों की उत्कंठा अंतत: उसी विचार को पोषित करती है कि निर्बाध सामाजिक गतिशीलता तो औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर ही अर्जित की जा सकती है । औपचारिक शिक्षा के द्वारा सभी वर्गों के लिए समान गतिशीलता के प्रति इस स्वीकार्यता में ही विचार भी अंतर्निहित है कि अभी कठिन परिश्रम और एक सीमा तक आधीनता स्वीकार कर यदि बच्चा औपचारिक शिक्षा हासिल कर लेगा तो भविष्य में वह अपेक्षाकृत कम श्रमसाध्य अथवा बिना रूटीनी नौकरी हासिल कर सकेगा । इसी केन्द्र पर रहने वाला बच्चा बताता है कि दरअसल खटनी का मतलब क्या है, ''मैं जानता हूं कि यदि मैं स्कूल जाऊंगा तभी मुझे किसी आफिस में काम करने वाली बिना खटनी वाली नौकरी मिल सकेगी । जबकि स्कूल गए बिना मुझे सिर्फ बहुत ज्यादा खटनी वाले काम ही मिल सकते हैं जैसे मुथैया स्टेशन से अपने सर पर टोकरा रख कर स्टेशन से सब्जी बाजार तक लाते हैं। अगर आप पढ़ लेते हैं तो आपको कम खटनी वाले काम मिल जाते हैं ।''

औपचारिक शिक्षा की इस विशेषता के बारे में मौन रहना इस प्रचलित मत की पुष्टि करना है कि बिना खटनी वाली नौकरियां ज्यादा प्रतिष्ठापूर्ण होती हैं । जहां खटनी वाली नौकरी में कठोर शारीरिक श्रम की जरूरत होती है, वहीं बिना खटनी की नौकरी में मुलाजिम को अपने दफ्तर में बैठना होता है; जैसे की डाक्टर, वकील या व्यवसायी बैठते हैं । जिन खटनी वाले कामों को ये बच्चे हीन दृष्टि से देखते हैं उनमें किसानी, खेती, कुलीगिरी आदि के ऐसे काम शामिल हैं जो उनके माता पिता गांवों में करते आ रहे हैं। यहां शिक्षा इस श्रेणीबद्ध द्विविभाजन की आलोचना करने में तो विफल साबित होती ही है, वह इसी प्रचलित धारणा को ही पुख्ता बनाती है कि शारीरिक श्रम हीन है, अनुपयोगी है और इसके लिए किसी प्रकार की योग्यता की जरूरत नहीं है ।

इसमें निहित सांकेतिक हिंसा लड़कों के इस विचार में खुलकर सामने आती है कि वे औपचारिक शिक्षा अर्जित करना चाहते हैं ताकि वे 'मानुष' बन सकें । इस संदर्भ में मानुष बनने का अर्थ मूलत: ऐसी नौकरी हासिल करने से है जो उन्हें मनुष्य की श्रेणी में रख सके । मानुष बनने की यह इच्छा केवल औपचारिक शिक्षा अर्जित करने पर ही पूरी हो सकती है ताकि वे बिना खटनी वाली नौकरी हासिल कर सकें । बारह बर्षीय राबिन स्कूल में दाखिला पाने के लिए उत्सुक है । अपने माता पिता की मौत और भाई के शराबी होने से पहले तक औपचारिक शिक्षा प्राप्त कर रहे राबिन को केन्द्र पर दूसरे दर्जे में आसानी से प्रवेश मिल गया ।

राबिन के साथ स्टेशन पर चहलकदमी करते हुए हम आने वाली ट्रेन की प्रतीक्षा में उकड़ू बैंठे मुथैया, कुलियों के पास से गुजरे तो उसने कहा ''आंटी मैं बड़ा हो कर इन मुथैया की तरह नहीं बनना चाहता कि बस यहां बैठकर ट्रेन का इंतजार करते रहो और जब रेल आ जाए तो सब्जी को बाजार पहुंचा दो । मैं इसलिए स्कूल जाता हूं ताकि पायलट बन सकूं । छोटी उम्र में कठिन मेहनत करना अच्छा है ताकि बड़े होकर मानुष बन सके ।''

यानि मानुष का दर्जा केवल औपचारिक शिक्षा के द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है । एक स्पष्ट व्यवस्था बनाने, ताकि मानुष के श्रेणी विभाजन को अलग से पहचाना जा सके, के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों की पृथक्करण, विश्लेषण और विभाजन की क्षमता ही बच्चों के बीच इस तरह की हीनभावनाओं को विकसित करती है। टिकारा और अब्बास मुझे एक खाली रेल में बीड़ी पीते हुए मिले तो मैं भी उनके साथ शामिल हो गई । और बातचीत से यह पता लगाने की कोशिश करने लगी कि दोनों में से एक ने औपचारिक शिक्षा अर्जित करना क्यों चुना और दूसरे ने क्यों नहीं।

हालांकि दोनों ने बहुत कम उम्र में घर छोड़ दिया था और टिकारा अपनी आजीविका चलाने के लिए सालों तक एक से दूसरे स्टेशनों पर रहता रहा जबकि अब्बास का घर छोड़ने के बाद यही केन्द्र पहला ठिकाना था । अब्बास गांव में अपने माता-पिता के साथ भी निरन्तर सम्पर्क में था जबकि टिकारा के पिता का देहान्त हो गया था और उसकी मां ने उसकी सुध लेनी छोड़ दी थी ।

अब्बास बोर्डिंग स्कूल से छुट्टियां मनाने के लिए आया हुआ था, वह टिकारा के स्कूल न जाने के निर्णय के प्रति तिरस्कारपूर्वक कहने लगा, ''आंटी यह इस तरह से सोचता है कि बाजार में ज्यादा पैसा कैसे कमाया जा सकता है इसलिए पढ़ाई में इसका दिमाग लग नहीं पाता । इसे पैसे का लालच हो गया है । मैं भी यदि पढ़ाई छोड़ दूं तो मुझे यहां स्टेशन पर काम मिल सकता है लेकिन ऐसे काम में खटनी बहुत ज्यादा होगी । लेकिन अगर मैं स्कूल में पढ़ूंगा तो मुझे ऐसी नौकरी मिल जाएगी जिसमें मेहनत कम करनी होगी और तब मैं मानुष की तरह रह सकूंगा।'' टिकारा कहता है, ''मैं जानता हूं कि पढ़ना अच्छा है लेकिन अब सत्रह साल का हो गया हूं । मैं एक नौकरी चाहता हूं और फिर शादी करना चाहता हूं । मैं जानता हूं कि मुझे बहुत मेहनत करनी होगी, अब्बास से भी ज्यादा मेहनत, तब भी मैं स्कूल नहीं जाऊंगा।''

शिक्षा जो कि उन्हें शारीरिक श्रम से बचाएगी और जिसके द्वारा वे मानुष बन सकेंगे, यह विचार मात्र इसलिए ही हिंसक नहीं है कि यह विभेद पैदा करता है और उनकी अतीत और वर्तमान की वास्तविकताओं के प्रति हीन भावना बढ़ाता है बल्कि इससे भी बड़ी हिंसा इस बात में निहित है कि मानुष बनना बिना खटनी वाले काम से जुड़ा है जो कि उनमें से अधिकांश को नहीं मिल पाएगा । इस तरह औपचारिक स्कूली शिक्षा को प्रमुखता देते हुए, इन शैक्षिक कार्यक्रमों के जरिए आदर्श 'मनुष्य' की परिभाषा के प्रति खास शहरी बुर्जुआ नजरिया अपनी पैठ बनाता चला जाता है । खटनी तथा मानुष के यह विमर्श ऐसे विमर्श हैं जो अधिकांश आधुनिक बंगाली समाज में अपने जटिल आधुनिक औपनिवेशिक इतिहास के साथ मौजूद हैं, वे गली के बच्चों के लिए संगठनों इत्यादि की शैक्षिक गतिविधियों के जरिये इन बच्चों जैसी ही हाशिये की आबादी के बीच ज्यादा तीव्रता के साथ बुनते जा रहे हैं ।

यहां तक कि जो बच्चे सफलतापूर्वक अपना व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं वे भी इसे न सिर्फ एक अपूरणीय क्षति मानते हैं बल्कि यह मानते हैं कि औपचारिक स्कूलों में न जाकर वे कुछ कम ही अर्जित कर पा रहे हैं । इससे भी अहम् बात यह है कि यह किशोर साक्षरता को अपनी खटनी वाले कामों के लिए अनिवार्य भी नहीं मानते । खुद्दुस के अनुसार ''मैं अब और पढ़ना नहीं चाहता। मैं अब एक दर्जी का काम करता हूं और मेरी मां मुझे कपड़ों पर फूल काढ़ने का काम दिला दे, इसका इंतजार कर रहा हूं। जब मैं छोटा था तब स्कूल जाता था । लेकिन अपने पिता की मृत्यु के बाद मुझे आजीविका कमाने में लगना पड़ा । अब मेरे लिए पढ़ाई का उपयोग केवल अपना नाम लिखना सीखना है जिसकी मुझे कपड़ों पर फूल काटते हुए कोई जरूरत नहीं पड़ेगी।''

शिक्षा के महत्व को बिना खटनी वाले कामों तक सीमित कर दिया जाने के कारण जो बच्चे औपचारिक स्कूलों को नहीं जा पाते हैं उनकी नजर में अक्षर ज्ञान अर्जित करना गैर जरूरी हो जाता है। गली के बच्चों के लिए शिक्षा के कार्यक्रम शिक्षा का व्यापक महत्व स्थापित करने और एक ऐसा तार्किक आधार बना पाने में नाकामयाब साबित हुए हैं जो औपचारिक शिक्षा के अलावा भी अपनी वैधता स्थापित कर सकें। इसके परिणाम स्वरूप वे गली के बच्चे जो औपचारिक शिक्षा अर्जित नहीं कर पाते, वे अपने द्वारा अर्जित अक्षर ज्ञान को भी बहुत कम महत्व देते हैं । यदि उनका औपचारिक शिक्षा के लिए स्कूल में चयन नहीं हो पाता है तो वे व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहते हैं जिसके लिए उनकी दृष्टि में किसी विशेष योग्यता की जरूरत नहीं होती, केवल कड़ी मेहनत की जरूरत है ताकि वे काम करते हुए सीख सकेंगे ।

विद्यार्थी केन्द्रित नजरिए की सीमा

यह शैक्षिक कार्यक्रम अपने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों में इन बच्चों के जीवन अनुभवों को भी शामिल करते हैं । इन बच्चों के रोजमर्रा के अनुभवों और मुहावरों इत्यादि को कहानी, खेल,

पहेली आदि अन्यानेक रूपों में बुनकर इनकी शैक्षिक सामग्री में शामिल किया जाता है ताकि इन बच्चों तक पहुंचा जा सके और सीखने के प्रति उनकी रुचि जागृत की जा सके । अध्यापन की यह प्रगतिशील तकनीकें इन बच्चों के जीवन की वास्तविकताओं का एक ऐसे शब्द भण्डार के रूप में कायापलट कर देती है जिसके जरिए पढ़ना लिखना और गणना करना ज्यादा बेहतर ढंग से सीखा जा सकता है । लेकिन इन बच्चों की सामाजिक अवस्थिति के लिए जिम्मेदार ऐतिहासिक कारणों के सटीक अध्ययन तथा विश्लेषण के अभाव में इन बच्चों में यह जीवन सत्य मात्र बेहतर ढंग से पढ़ना-लिखना सीखने और जल्दी से जल्दी उन्हें औपचारिक शिक्षा के लिए स्कूलों में प्रवेश दिलाने के उद्देश्य तक सीमित रह जाते हैं।

यानि मानुष का दर्जा केवल औपचारिक शिक्षा के द्वारा ही अर्जित किया जा सकता है । एक स्पष्ट व्यवस्था बनाने, ताकि मानुष के श्रेणी विभाजन को अलग से पहचाना जा सके, के लिए शैक्षिक कार्यक्रमों की पृथक्करण, विश्लेषण और विभाजन की क्षमता ही बच्चों के बीच इस तरह की हीनभावनाओं को विकसित करती है।

इन असंगत क्रियाकलापों के चलते प्रगतिशील शिक्षा शास्त्र एक खास किस्म की तकनीक विकसित करने तक सीमित रह जाता है जिसमें सारा जोर उदारता का मुखौटा लगाए इन बच्चों के जीवनानुभवों से पाठ्यसामग्री विकसित करने मात्र पर दिया जाता है। समाज में बच्चों की भूमिका को सीमित किए जाने, बच्चों द्वारा किए जाने वाले कार्यों, और गलियों में रहते हुए वे अपने लिए जो सामाजिक तथा सांस्कृतिक जमीन तैयार करते हैं, उसका अध्ययन होता है, दस्तावेज बनाए जाते हैं और पाठ्यक्रम में उसे रूपान्तरित किया जाता है ताकि बच्चों की जानी पहचानी भाषा में उनके जीवन के सच को चित्रित किया जा सके। इस सारी सामग्री को तैयार करने के पीछे जो अन्तरनिहित उद्देश्य है, वह यह बताना है कि औपचारिक शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके जरिए बच्चे को जीवन के इन कटु अनुभवों से बाहर आने का रास्ता मिल सकेगा। औपचारिक शिक्षा ही वह अचूक उपाय है जो उन्हें वर्तमान से निकाल कर सुनहरे भविष्य की ओर ले जाएगी, जहां जो इच्छाएं गलियों में पूरी नहीं हो सकती, वे पूरी हो सकेंगी । गली के बच्चों के लिए बनाए गए इस प्रगतिशील पाठ्यक्रम को प्रयोग में लाने के तरीके से ही यह स्पष्ट होने लगता है कि उनके रोजमर्रा के जीवनानुभवों से आरंभ होने वाले इस पाठ्यक्रम का अन्तर्निहित उद्देश्य उन्हें ऐसे भविष्य की ओर ले जाना है जो उन्हें इन जीवन सत्यों से दूर ले जाएगा ।

यद्यपि इस तरह से तैयार पाठ्यक्रम में उनके जीवन का प्रतिबिम्ब होता है लेकिन उसमें यह निहित होता है कि वे अभावों का जीवन जी रहे है । उन्हें बुर्जुआ जीवन शैली का प्रलोभन दिया जाता है कि यदि वे कठिन परिश्रम करें तो औपचारिक शिक्षा के जरिए वे अपना बेहतर भविष्य बना सकते हैं । इस तरह इस सुधारवादी पाठ्यक्रम में व्यवस्था में परिवर्तन के लिए आलोचना तथा दृष्टि का अभाव समाजीकरण की प्रक्रिया में इसकी भूमिका को सीमित करता है जबकि इसी प्रक्रिया के जरिए हाशिये का अतीत तथा वर्तमान बिता रहे बच्चों को संबल मिल सकता है और वे कठिन प्रतीत होने वाले भविष्य को पाने के लिए उत्साहित हो सकते हैं ।

इसके अलावा इन शैक्षिक केन्द्रों पर औपचारिक शिक्षा से जिस तरह का वर्चस्व कायम किया जाता है वह सत्ता तथा नियंत्रण की नई तकनीकों को अपनाने में सहायक होता है जिनके तहत इन बच्चों का वर्गीकरण व अवलोकन किया जाता है, इन्हें चिन्हित किया जाता है और अलग किया जाता है । इन स्थानों पर अपनाई जाने वाली अध्यापन की तकनीकें निरंतर निगरानी की परिपाटी कायम करती हैं मानो बच्चे की अनुपस्थिति, उपस्थिति, रुचियां, क्षमताएं व लैंगिकता आदि सभी बातों को नियंत्रित करने और एक व्यवस्था प्रदान करने की जरूरत है । ऐसे में बच्चे पर निगरानी रखने, उसके आचरण को नियंत्रित करने पर जोर दिया जाता है और इसके लिए बच्चे के विकास को आंकने के लिए विस्तृत रिकार्ड बनाया जाता है और फिर उन विशेष केस स्टडियों के जरिए एक माडल तैयार किया जाता है कि किस तरह के बच्चे के साथ किस तरह का बर्ताव कारगर साबित होता है । इस तरह के वर्गीकरण के लिए एक खास किस्म का नियम काम करता है जिसके तहत इन बच्चों को आंका और बांटा जाता है । यह बिडम्बना ही है कि इस तरह जो गली के बच्चे की आदर्श छवि बनती है उसकी आज्ञा परायणता ही वह निर्देशिका बन जाती है जिसके जरिए उसके साथियों के विचलन को नापा जाता है । चूंकि मौजूदा औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में इस तरह के विचलन के लिए कोई स्थान नहीं है इसलिए बच्चा इसे भी अपनी ही विफलता मानने लगता है ।

इसी तरह यह व्यक्तिगत सफलता पर भी ध्यान केन्द्रित करती है । सभी बच्चों से एक सी अपेक्षा रखे जाने के परिणाम स्वरूप बच्चों के वे बहुरंगी अनुभव धुंधला जाते हैं जिनके साथ बच्चे यहां प्रवेश लेते हैं । इन शैक्षिक कार्यक्रमों में गली के बच्चों को एक संभागी समूह के रूप में देखा जाता है । उनकी यह एकरूपता उनकी हाशिये की स्थिति के कारण अनुमानित कर ली जाती है और इसका उपयोग उनकी सामूहिक शक्ति को स्वर देने की बजाय उनके बीच तुलना करने में किया जाता है ।

औपचारिक शिक्षा के सहजीकरण को समझने का एक प्रयास

वर्ष 1989 में बच्चों के अधिकारों संबंधी सम्मेलन ने गरीब बच्चों के जीवन को अंतरराष्टीय दृष्टि के समक्ष ला दिया जो कि गहन, अविरल तथा उनकी भौतिक जीवन स्थितियों पर केन्द्रित थी। हम औपचारिक शिक्षा के सुदृढ़ीकरण को ही सब समस्याओं का अचूक समाधान मान बैठते हैं । जबकि यह भी स्वीकार करते हैं कि औपचारिक शिक्षा का यह सहजीकरण दीर्घकालीन उपनिवेशवाद तथा आधुनिकता के प्रसार का एक अंग है । इस खंड में मैं इसी पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करूंगी कि कैसे मौजूदा दृष्टि सीमा 'भूमंडलीय' को असंदिग्ध तथा सामान्यीकृत और इस तरह यूरोप केन्द्रित आधुनिक बचपन को तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों के लिए अपनाया जा रहा है ।

बच्चों के बारे में इस दृष्टि पर मेरे विचार आर्टुरो एस्कोबर के 'विकास से सामना: तीसरी दुनिया का बनना और बिगड़ना' (एन्काउंटिंग डवलपमेन्ट : मेकिंग एंड अनमेकिंग ऑफ थर्ड वर्ल्ड) से प्रभावित हैं जिसके अनुसार 'विकास' एक ऐतिहासिक विमर्श है। बहुत से तीसरी दुनिया के देशों ने स्वयं को दूसरे विश्व युद्ध के बाद के समय में ही अल्प विकसित के रूप में देखना शुरू किया है, जिसका एक मात्र कारण पश्चिम के आर्थिक दृष्टि से ज्यादा शक्तिशाली देशों द्वारा प्रदत्त यह विचार थे जिनके अनुसार 'विकसित' समाज की चारित्रिक विशेषताओं में औद्योगिकरण तथा शहरीकरण का उच्च स्तर, कृषि का तकनीकीकरण, भौतिक उत्पादों तथा जीवन स्तर में तीव्र विकास और आधुनिक शिक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाने में तीव्रता को अनिवार्य शर्त बना दिया गया । ऐसे में तीसरी दुनिया के देशों के लिए ऐसा संबोधन तलाशना अनिवार्य हो गया जो कैसे बना, यह भी स्पष्ट हो जाए और जिससे तकनीक तथा ऊर्जा पर नियंत्रण वाली शक्तियों को भी पहचाना जा सके और कुछ ऐसे आधार भी तय हो जाएं जिनके तहत लोग स्वयं को विकसित अथवा अल्पविकसित के रूप में पहचान सकें ।

विकास के प्रतिमानों के तहत तीसरी दुनिया के बच्चों को ज्यादातर उनकी माताओं के लिए चलाए जाने वाले खासतौर से मातृ एवं शिशु कल्याण कार्यक्रमों में ही शामिल कर लिया गया । नब्बे के दशक के दौरान ही हम यह देखते हैं कि बच्चों की जरूरतों को उनके माता पिता से अलग करके देखा जाने लगा है । तीसरी दुनिया की महिलाओं के लिए शुरू किये गए और समय समय पर विभिन्न परिवर्तनों के साथ चलाए जा रहे कार्यक्रमों के विश्लेषण के जरिए यह समझा जा सकता है कि विकास के इस तंत्र में तीसरी दुनिया के बच्चों ने कैसे एक नए विषय के तौर पर स्थान बनाया है।

1970 से पहले तक तीसरी दुनिया की स्त्रियों को मां, पत्नी और गृहिणी के रूप में देखा जाता था । इस तरह घर के अंदर और घर की अर्थव्यवस्था के लिए वे जो काम करती, परिवार की आय के लिए जो हस्तशिल्प की वस्तुएं बनाती वह सब उपेक्षित ही रह जाता । स्त्रियां 'अदृश्य किसान' होती हैं जिनके प्रयासों के परिणामस्वरूप कृषिजन्य लाभ पुरूष को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं । 1973 में विकास के तंत्र में स्त्री की उपस्थिति को स्वीकार करने के साथ ही उसकी विकास की प्रक्रिया में केन्द्रीय भूमिका को माना गया । एडीली मुलर यह रेखांकित करती हैं कि कैसे इस व्यवस्था ने तीसरी दुनिया की स्त्रियों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराई जिससे उनके जीवन के बारे में एक खास 'संस्थागत निर्मित यथार्थ' को लाभ हुआ है, यह यथार्थ पहले से ही वाशिंगटन, रोम, ओटावा तथा तीसरी दुनिया के देशों की राजधानियों में उठाई गई विकास की समस्याओं की संकल्पना के समान है । जैसा कि एस्कोबार कहते हैं :

''जब महिलावादी शोधकर्ता तथा विकास के विशेषज्ञ, जैसा कि उनकी समस्याओं की प्रकृति तथा कार्य का केन्द्र बिन्दु है, विकास में महिला के वर्ग को उसी रूप में स्वीकार कर लेते हैं जैसा कि विकास के तंत्र ने उसे निर्मित किया है, तब म्यूलस कहते हैं कि वे इसके साथ ही खास किस्म की सामाजिक सत्ता को भी स्वीकार कर लेते हैं, तयशुदा प्रक्रिया तथा आंकडों का उपयोग महिलाओं के अनुभवों में खास किस्म की कांटछांट को अवश्यंभावी बना देते हैं । यह प्रतीक रूप विवरण ''एक सीमा तक जानने और एक सीमा के बाद न जानने, एक सीमा तक महिला के बारे में जानने और एक सीमा के बाद महिलाओं को अपने अनुभवों के बारे में चुप बैठा देने वाले साबित होते हैं ।'' क्योंकि उनका संयोजन कुछ अदृश्य तथा निरंकुश बाहरी ताकतों के हाथ में होता है।''

तीसरी दुनिया के देशों के गरीब बच्चों के लिए तैयार किए जाने वाले कार्यक्रमों में अन्तर्निहित यही सामाजिक सत्ता इनके जीवन को ऐसे अलग अलग वर्गों में बांटती है जिसका आधार कुछ खास नियमों या बातों का अभाव होता है जैसे कि 'गली के बच्चे' 'बाल श्रमिक, एड्स से ग्रस्त बच्चे, बाल वेश्या यानि वे सभी बच्चे जो खास तरह की कठिन परिस्थितियों में है फिर चाहे वे केप टाउन में हैं या कलकत्ता में ।

इन वर्गीकरणों को विश्व भर में समान रूप से लागू किए जाने के लिए गरीब बच्चों के बारे में कुछ खास किस्म की जानकारियां होना जरूरी हो जाता है जो कि अधिकांशत: आंकड़ों, केस-अध्ययनों तथा इस तरह से तैयार की गई अन्य किसी सामग्री से ही प्राप्त की जा सकती हैं ।

यह वैश्विक नामकरण, वर्गीकरणों का निर्माण इनके जीवन के बारे में अध्ययन को भौतिक यथार्थ तक सीमित कर देता है और जिससे परे गरीब बच्चों के बहुमुखी जीवनानुभवों को न देखा जा सकता है और न उनको विश्लेषित ही किया जा सकता है । यह निरूपण इनके जीवन के 'सत्य' एवं तथ्य के प्रमुख दस्तावेज के रूप में उभरता है और इस तरह इन कठिन वास्तविकताओं के खिलाफ यूरोप केन्द्रित, आधुनिक बचपन को अपनाने की अनुमति मिल जाती है ।

आधुनिक बचपन की सुरक्षा, संरक्षण, सहजता के क्षेत्र के रूप में एकांगी व्याख्या को जब गरीब बच्चों के शोषण से युक्त जीवन की तुलना में रखकर देखा जाता है तो आधुनिक बचपन एक खास किस्म की सम्पन्नता से युक्त दिखाई देता है कि इसका निर्धारण असंदिग्ध छूट जाता है । गरीब बच्चों की कठिनाइयों से छुटकारा तभी संभव है जब उसे आधुनिक बचपन की परिधि में ले आया जाए, ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अभाव में ही बच्चे को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, जैसा कि लाक्ता तथा मॉफे कहते हैं :

''एक वर्ग सिर्फ इस हद तक ही शासन नहीं करता कि वह शेष समाज पर विश्व की एक जैसी संकल्पना को आरोपित करने में सक्षम है बल्कि वह विश्व की विभिन्न संकल्पनाओं को इस तरह से सम्मिलित कर सकता है कि उनकी संभावित प्रतिरोधक क्षमता भी क्षीण हो जाए ।''

इस तरह सत्ता का चक्र केवल बचपन की यूरोप केन्द्रित आधुनिक संकल्पना को वैश्विक स्तर पर लागू करने में ही काम नहीं करता बल्कि गरीब बच्चों की खास किस्म की व्याख्या के द्वारा एक खास किस्म की जानकारी तैयार की जाती है जो इस आधुनिक बचपन को महिमा मंडित करने वाले वैश्विक समाधान को आगे बढ़ाता है । मौजूदा असंगत गतिविधियों में तीसरी दुनिया के गरीब बचपन को आधुनिक बचपन से अन्य के रूप में निर्मित किया जाता है ।

निष्कर्ष

इस पत्र का आशय यह नहीं है कि गली के बच्चों को औपचारिक शिक्षा के विद्यालयों में प्रवेश नहीं दिलाया जाना चाहिये। बल्कि यहां उस समस्या को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है जो औपचारिक शिक्षा को तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों की समस्याओं का अचूक समाधान मानने वाले मौजूदा नजरिए में निहित है । इसके लिए न केवल शिक्षा केन्द्रों की असंगत गतिविधियों को उद्घाटित किया गया है बल्कि यह भी बताया गया है कि कैसे सत्ता खास किस्म के विमर्श तक पहुंचने तथा तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों के जीवन को देखने के लिए नजरिए बनाने में अपनी भूमिका अदा करती है । इस तरह बना नजरिया तथा उत्पादित जानकारी आधुनिक बचपन की संकल्पना को ही इन गरीब बच्चों के जीवन का एक मात्र तर्कसंगत तथा प्रगतिशील जवाब बनने देती है ।

तीसरी दुनिया के बच्चों के बारे में इस तरह की जानकारी के उत्पादन से हम सभी शोधकर्ता अथवा कार्यकर्ता आदि किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं और इस तरह हमारे कार्य आधुनिक बचपन के संस्थापन तथा व्यवस्थापन में अपना योगदान देते हैं जबकि भविष्य में इसकी भी समस्याओं पर काम करना होगा । आधुनिक बचपन की इस समग्र व्याख्या में बचपन की कौन सी स्थानीय व्याख्याएं नकार दी जाती हैं ? बच्चों के बारे में यह मौजूदा नजरिया उन्हें बचाने की यह जरूरत वैश्वीकरण के दौर में पूंजीगत हितों से कैसे टकराएगी ? हमारे कार्यक्रमों में बच्चों को ज्यादा से ज्यादा विशिष्टता प्रदान करना, किस तरह से उनके जीवन में माता-पिता तथा समुदाय की भूमिका को सीमित कर रहा है ? क्या इससे यह विचार पोषित नहीं हो रहा है जो जीवन की इन कठोर वास्तविकताओं के लिए माता पिता और उनकी परंपराओं, आलस, लालच तथा अपराधिक गतिवधियों को जिम्मेदार ठहराता है ।

विचार करने पर यह सवाल ढांचागत समायोजन की नीतियों, आर्थिक एवं सामाजिक आधारभूत ढांचे को नष्ट करने, कृषि तथा उद्योग से सब्सिडियों को समाप्त करने, ग्रामीण गरीबों के अस्तित्व को बनाए रखने वाले जीवन यापन के तरीकों के न रहने तथा उनके विस्थापन के लिए विवश होने के कारणों से अधिक महत्व पा जाते हैं ।

इस प्रदत्त यथार्थ के बरक्स गरीब बच्चों के बारे में इस उदार दृष्टिकोण को अपनाने की जरूरत है । इसके लिए बच्चों को उसकी खास स्थानीयता, नव उदार आर्थिक नीतियों और उनके अनुवर्ती एकांगी क्रियाकलापों के प्रति सामूहिक प्रतिक्रियाओं के साथ 'बचाना' ज्यादा जरूरी है बनिस्पत मौजूदा प्रमुख उदाहरणों के जिनके अनुसार बच्चे को शहरी बुर्जुआ कार्यक्रमों से सफलतापूर्वक जोड लेना ही उसे 'बचाना' है । जरुरत इस बात की भी है कि इन बच्चों के लिए बनाए जाने वाले कार्यक्रमों में अन्तर्निहित परोपकार की प्रकृति को प्रश्नित किया जाये । केवल इस तरह प्रश्न उठाना शुरू कर कोई भी इन कार्यक्रमों की असंगतता और इनके द्वारा सुझाए गए सहजीकरण कितने असंभव है यह स्पष्ट कर सकता है और इस तरह तीसरी दुनिया के गरीब बच्चों की मौजूदा चिंताओं के ज्यादा निकट पहुंचने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है । ◆